अध्याय– 4

आहार एवं स्वास्थ्य के बीच सम्बन्ध

भवति चात्र–

"आहारविध्यायतनानि चाष्टौ सम्यक् परीक्ष्यात्महितं विद्ध्यात् ।अन्यश्च यः कश्चिदिहास्ति मार्गो हितोपयोगेषु भजेत तं च।। 14।।

अशितं खादितं पीतं लीढ च क्क विपच्यते। एतत्त्वां धीर। पृच्छामस्तत्र आचक्ष्व बुद्धिमन्।। 15।।

इत्यग्निवेश प्रमुखैः शिष्यैः पृष्टः पुनर्वसुः। आचचक्षे ततस्तेभ्यो यत्राहारो विपच्यते।। 16।।

नाभिस्तनान्तरं जन्तोरामाशय इति स्मृतः। अशितं खादितं पीतं लीढं चात्र विपच्यते।। 17।।

आमाशयगतः पाकमाहारः प्राप्यकेवलम्।। पक्कः सर्वाशयं पश्चद्धमनीभिः प्रपद्यते।। 18।।[1]

खाये, चबाये, पीये या चाटे सब अन्न पान कहा पर पचते है। हे गुरु यह हम आप से पूछते है। हे बुद्धिमान यह आप हमको बताइये इस तरह अग्निवेश आदि शिष्यों के पूछने पर आत्रे पुनर्वसु ने उनको उपदेश दिया, मनुष्य के नाभि और स्तनों के मध्य भाग को 'अमाशय' (Stomach) कहते है। स्तनो से नीचे और नाभि के ऊपर अमाशय और नाभि के नीचे गुदा से ऊपर के भाग को 'पक्वाशय' कहते है। अमाशय में अशित, (Chaewables) खादित, (Eatable) पीत (Drinkables) और लीढ (Lickable) ये चारों प्रकार का अन्न बचता है। अमाशय में पहुंच सब प्रकार का अन्न यहा पर परिपक्क होकर धमनी स्त्रोतो द्वारा सम्पूर्ण शरीर में फैल जाता है।

---

1 च.सं., वि०स्था०, अ० 2/14–18

इस प्रकार से यह कहा जा सकता है कि आज से 2500 वर्षों पूर्व के भारतीय मनीषियों को न केवल आहार तथा उसकी समुचित पाचन की पूर्ण जानकारी थी। कैसे और कहां भोजन का पाचन होता है। और उस भोजन के कितने प्रकार है उसको सविस्तार आर्युवेदिक चिकित्सा ग्रन्थों में स्थान दिया गया है यह अन्न शरीर को कैसे पोषित करता है। उसकी जानकारी सप्त धातु चिकित्सा पद्धति में उद्घृत की गयी है।

आयुर्वेद के अनुसार शरीर में अन्न ग्रहण करने के पश्चात् वह सात धातु में विभक्त होती है जिसका विवरण चरक संहिता, सुश्रुत संहिता, अष्टांग ह्दय आदि ग्रंथों में लिया गया है। जिसमें अन्न रस में, रस रक्त में, रक्त मांस में, मांस मेंद में, मेद अस्थि में, अस्थि मज्जा में, और मज्जा शुक्र में परिवर्तित होकर शरीर को पोषित करती है। जहाँ रस के द्वारा धातुओं का पोषण होता है। उसी रस के मध्यम से ही सम्पूर्ण शरीर में ही रक्त का परिभ्रमण होता है रस धातु का निर्माण में मुख्य रूप से उस आहार रस के द्वारा होता है जो जो जठराग्नि में प्रदिप्त होकर आहार का परिणाम देता है।

मांस शरीर में सब धातुओं के अपेक्षा सबसे अधिक होती है। आयुर्वेद में इसका निश्चित प्रमाण नहीं मिला लेकिन आधुनिक मान्यतानुसार सम्पूर्ण शरीर के भार पर 89 प्रतिशत भार मांस का होता है। बिना मांस के कोई भी चलित कार्य नहीं हो सकता। वही मेद शरीर में स्वेद उत्पन्न करता है और शरीर को अस्थियों के माध्यम से दृढ़ता प्रदान करता है। शरीर में स्थिरता अस्थियों के माध्यम से ही आती है अस्थियों का मूल रूप से दो कार्य है देह को धारण करना तथा मज्जा की पुष्टि करना। अस्थि धातु के अणु भाग से मज्जा धातु की उत्पत्ति होती है और शरीर में त्वचा की स्निग्धता मज्जा धातु के ही अधीन होती है शरीर में बल उत्पन्न करने का कार्य मज्जा के द्वारा होता है मज्जा के अग्रिम धातु शुक्र होती है शरीर में ऐसा कोई स्थान नहीं शुक्र की विद्यामान्यता ना रही हो शुक्र सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त होकर शरीर को बल उत्साह गर्भ की उत्पत्ति के लिए बीज प्रदान करती है इसके अतिरिक्त शुक्र का मुख्य कार्य संतानोंत्पत्ति करना है इन सप्त धातुओं की साम्यता के कारण शरीर स्वस्थ रहता है। जिसको आयुर्वेद में इस प्रकार परिभाषित किया गया है

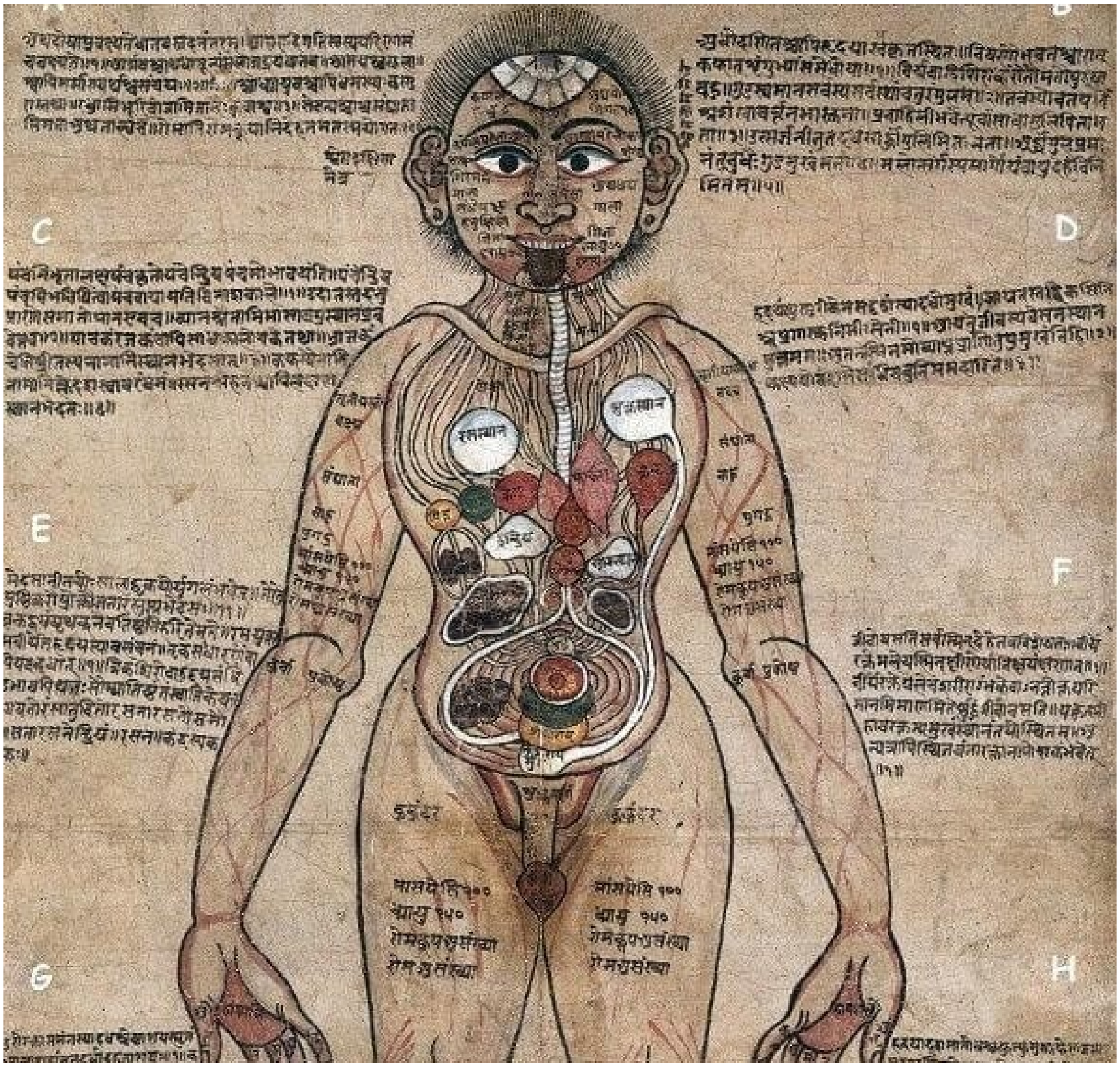

चित्र सं० 9 : आयुर्वेद : मानव शरीर रचना

समदोषः समाग्निश्च समधातु मलक्रियाः
प्रसन्नात्मेन्द्रियमनाः स्वस्थः इत्यभिधीयते।।[2]

मात्राशी स्यात्। आहार मात्रा पुनरग्नि बलापेक्षिणी।। 3।।[3]

चरक संहिता, सूत्र स्थान, अध्याय 5

---

2 सु०सं०, सू०स्था०, अ० 15/10

3 च०सं०, सू०स्था०, अ० 5

भोजन में आहार (Diet) की समुचित मात्रा लेना चाहिए भोजन की यह मात्रा पाचन शक्ति के आहार पर निर्भर होना चाहिए अर्थात् हर व्यक्ति की पाचन शक्ति हर आयु ऋतु के अनुसार बदलती रहती है और मनुष्य को अपने आयु अनुरूप आहार की समुचित मात्रा लेनी चाहिए अन्यथा यह शरीर में दोष प्रकूपित करती है।

अन्न, सब प्राणियों का प्राण है। सारा संसार इसी अन्न की याचना करता है। अन्न में ही वर्ण, शरीर के प्रसन्नता, सुस्वरता, जीवन, प्रतिभा, सुख,संतुष्टि, हर्ष, पोषण, बल, मेधा, ये सब बाते स्थिर हैं। सांसारिक कर्म तथा स्वर्ग प्राप्ति में यज्ञादि जो वैदिक मोक्षदायक यज्ञ, तप आदि कर्म हैं, वे सब अन्न में प्रतिष्ठित हैं।

प्राणाः प्राणभृतामन्नमन्नं लोकोऽभिधावति।
वर्णः प्रसादः सौस्वर्यं जीवितं प्रतिभा सुखम्।।349।।[4]
तुष्टिः, पुष्टिर्बलं मेधा सर्वमन्ने प्रतिष्ठितम्।
लौकिकं कर्म यद्वृत्तौ स्वर्गतौ यच्च वैदिकम्।।350।।
कर्मापवर्गे यच्चोक्तं तच्चाप्यन्ने प्रतिष्ठितम्।[5]

पोषण और स्वास्थ्य

पोषण आहार–तत्व सम्बन्धी विज्ञान है। यह एक नई विचारधारा है, जिसका जन्म मूलतः शरीर विज्ञान तथा रसायन विज्ञान से हुआ है। आहार, पोषण तत्वों व अन्य तत्व उनका प्रभाव और प्रतिक्रिया तथा स्वास्थ्य व बीमारी से उसका सम्बन्ध व संतुलन का विज्ञान ही पोषण है। कार्बोज, प्रोटीन, वसा, विटामिन, खनिज लवण व पानी प्रमुख पोषण तत्व हैं। ये आवश्यक तत्व जब (सही अनुपात में) हमारे शरीर की आवश्यकता अनुसार उपस्थित होते हैं, तब उस अवस्था को सर्वोत्तम पोषण या समुचित पोषण की संज्ञा दी जाती है। यह सर्वोत्तम पोषण स्वस्थ शरीर के लिए नितान्त आवश्यक है। कुपोषण अधिक पोषण व कम पोषण दोनों को कहते हैं। आहार और स्वास्थ्य का

---

4 च०सं०, सू०स्था०, अ० 27/349
5 च०सं०, सू०स्था०, अ० 27/350

घनिष्ठ सम्बन्ध है। रसायन विज्ञान, जीव विज्ञान और अन्य वैज्ञानिकों ने सदियों लम्बे अध्ययन और अनुसंधान के बाद यह तथ्य स्थापित किए हैं। शरीर के पोषण पर अनेक बातों का प्रभाव पड़ता है; जिनमें भोजन की आदतें, मान्यताएं, मनःस्थिति, जातीय, भौगोलिक, धार्मिक, सामाजिक, मनोवैज्ञानिक, आहार और उसका उत्पादन राष्ट्रीय व अंतः आहार सम्बन्धी नीति इत्यादि हैं। आमतौर पर स्वास्थ्य को बीमारी का न होना मानते हैं।

चरक के अनुसार

> विविधमशितं पीतं लीढं खादितं जन्तोर्हितमन्तरग्निसन्धुक्षितबलेन
> यथास्वेनोष्मणा सम्यग्विपच्यमानं
> कालवदनवस्थितसर्वधातुपाकमनुपहतसर्वधातूष्ममारुतस्त्रोतः केवलं
> शरीरमुपचयबलवर्णायुषा योजयति, शरीरधातूनूर्जयति च। धातवो हि
> धात्वाहाराः प्रकृतिमनुवर्तन्ते।।3।।[6]

मनुष्य का खाया, पिया, चाटा या चबाकर दातों से लिया गया भोजन, नाना प्रकार के हितकारी पदार्थ, जठराग्नि के प्रदीप्त चक्र के कारण तथा पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश इन पांच महाभूतों को अपनी–अपनी गरमी से (पृथ्वी आदि के गुण वाले) आहार द्रव्यों का पाचन होता है। इस प्रकार से पचा हुआ अन्न काल की भांति नित्य निरन्तर गति करता हुआ, सब धातुओं के लगातार होने से जिस शरीर में क्षीणता उत्पन्न हो रही है उस शरीर को तथा जिस शरीर में सब धातुओं की गरमी बनी हुई है और वायु का स्त्रोत जिस शरीर में उपस्थित हैं, ऐसे सम्पूर्ण शरीर की वृद्धि करने के साथ–साथ बल, वर्ण, सुख और आयु देता है तथा शरीर के धातुओं को तेज प्रदान करता है। धातु ही जिनका भोजन है ऐसे रसादि धातु नित्य प्रति खाये हुए भोजन रूपी धातु को खाकर स्वस्थ अवस्था में रहते हैं।

---

6 च०सं०, सू०स्था०, अ० 28/3

तत्राहारप्रसादाख्यो रसः किट्टं च मलाख्यमभिनिर्वर्तते। किट्टात्
स्वेदमूत्रपुरीषवातपित्तश्लेष्माणः
कर्णाक्षि–नासिकास्य–लोम–कूप–प्रजनन–मलाः
केश–श्मश्रु–लोम–नखादयश्चवयवाः पुष्यन्ति। पुष्यन्ति त्वाहाररसाद्र
–सरुधिर–मांस–मेदोस्थि–मज्ज–शुक्रौजांसि पञ्चेन्द्रियद्रव्याणि
धातुप्रसादसंज्ञकानि शरीर–सन्धि–बन्ध–पिच्छादयच्श्वयवाः। ते सर्व एव
धातवो मलाख्याः प्रसादाख्याश्च रसमलाभ्यां पुष्यन्तः स्वं मानमनुवर्तन्ते
यथावयः शरीरम्। एवं रसमलौ स्वप्रमाणावस्थितावाश्रयस्य
समधातोर्धातुसाम्यमनुवर्तयतः। निमित्ततस्तु क्षीणवृद्धानां प्रसादाख्यानां
धातूनां वृद्धिक्षयाभ्यामाहारमूलाभ्यां रसाः साम्यमुत्पादयत्यारोग्याय किट्टं च
मलानामेवमेव। स्वमानातिरिक्ताः पुनरुत्सर्गिणः
शीतोष्णपर्यायगुणैश्चोपचर्यमाणा मलाः शरीरधातुसाम्यकराः समुपलभ्यन्ते।[7]

तेषां तु मलप्रसादाख्यानां धातूनां स्त्रोतांस्ययनमुखानि। तानि यथाविभागेन
यथास्वं धातूनापूरयन्ति। एवमिदं शरीरमशितपीतलीढखादित प्रभवम्।
अशितपीतलीढखादितप्रभवाश्चास्मिञ्शरीरे व्याधयो भवन्ति।
हिताहितोपयोगविशेषास्त्वत्र शुभाशुभविशेषकरा भवन्तीति।[8]

इस आहार से एक प्रसाद रूपी रस, बनता है। इनमें किस भाव से पसीना, मूत्र, मल, वायु, कफ और कान, आंख, नाक मुख, कूप और भव पुष्ट होते हैं। आहार के प्रसाद रूपी रसभाग से, रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा, शुक्र, ओज तथा पृथ्वी, तेज, वायु, आकाश (ये पंच महाभूत तो इन्द्रियों को बनाने वाले हैं) अत्यन्त शुद्ध रूप में स्थित धातु शरीर को बांधने वाली स्नायु, शिरा आदि, सन्धियां, आर्प्तक और दूध बनाते हैं। ये सब मल नामक धातु या प्रसाद रूप धातु रस और मल द्वारा पुष्ट होते हुए आयु के अनुसार अपने परिणाम में बनते हैं (अथवा कृश, स्थूल, छोटे, बड़े में अपने परिणाम से बनते हैं)।

आहार के रसादि धातु में बदलने के विषय में एक पक्ष यह है कि रस, रक्त धातु में बदलता है और रक्त मांस में, इस प्रकार आगे परिवर्तन होता जाता है। जिस प्रकार दही जमते हुए सम्पूर्ण दूध दही रूपी में बदलता है, इसी प्रकार सम्पूर्ण रस रक्त रूप में बदल जाता है और रक्त मांस में इसी प्रकार आगे। दूसरे आचार्य इस परिवर्तन

---

7 च०सं०, सू०स्था०, अ० 28/4

8 च०सं०, सू०स्था०, अ० 28/5

को 'केदार–कुल्यान्याय' से मानते हैं। अर्थात् खेल में बहती पानी की धार में से प्रत्येक क्यारी अपना 2 पानी ले लेती है इसी प्रकार यहां पर भी अन्न से उत्पन्न रस, रस धातु में जाकर कुछ भाग से रस बन जाता है और शेष रस भाग रक्त में जाकर रक्त के गन्ध, वर्ण से मिल कर रक्त बन जाता है और शेष रस भाग आगे मांस धातु में पहुंचता है, वहां मासं के गन्ध–वर्ण में मिलकर मांस बन जाता है, और इससे अवशिष्ट रस भाग मेद में चला जाता है, वहां भी पूर्व की भांति क्रिया होता है। इसी प्रकार आगे 2 चलता जाता है। तीसरे पक्ष वाले कहते हैं कि– अन्न रस पृथक् 2 धातु मार्ग में जाकर रसादि धातुओं का पोषण करता है, यह नहीं कि इस धातु को पोषण करने वाला ही रक्त धातु में जाता हैं। रस आदि को पोषण करने वाले स्त्रोत उत्तरोत्तर सूक्ष्म मुख वाले और लम्बे हैं। इस प्रकार से रस को पोषण करने वाला भाग रसमार्ग में गमन करके रस का पोषण करता है, एवं रस का पोषण करने के पीछे रक्त पोषक मार्ग में जाने से रक्त का पोषण करता है, इस प्रकार रक्त का पोषण करने के पीछे मांस को पोषण करने वाला रस भाग दूर एवं सूक्ष्म मार्ग में गमन करने से मांस का पोषण करता है। इसी प्रकार आगे मेद आदि का पोषण हो जाता है। इस पक्ष में दूध आदि वृष्य वस्तुओं से उत्पन्न रस प्रभाव से शीघ्र ही शुक्र से मिलकर शुक्र का पोषण कर देता है, इसी प्रकार दुष्टावस्था में भी एक दोष के दुष्ट होने से अन्य धातु दुष्ट नहीं होते, परन्तु परिमाण पक्ष में रस–धातु के दुष्ट होने से रक्त आदि धातु भी दूषित हो जाते हैं, इसके अतिरिक्त परिणाम पक्ष में तीन चार उपवास से शरीर की मृत्यु होनी चाहिये और एक मास के वृष्यसेवन से तो सम्पूर्ण इस प्रकार से शरीर के अपने स्वरूप में (न अधिक और न कम परिमाण में) स्थित होने पर धातु–साम्यावस्था में रहते हैं। प्रसाद रूप धातुओं का श्रय या वृद्धि जो निमित्त को लेकर होती है, वह आहार के कारण ही होती है, इस लिये आहार द्वारा वृद्धि और क्षय का सात्म्य उत्पन्न होकर आरोग्यता उत्पन्न होती है इसी प्रकार किट्ट और मल भी शरीर के आरोग्य सम्पादन में सहायक होते हैं। अपने परिमाण से अधिक बढ़े हुए किट्ट और मल को बाहर निकाल कर तथा शीत से उत्पन्न मल में उष्ण, उष्ण से उत्पन्न मल में शीत परिचर्य्या से मल शरीर के धातुओं को समानावस्था में रखते हैं। इन मल अर्थात् प्रसाद नामक धातुओं के स्त्रोत गमन

करने के मार्ग हैं और ये स्त्रोत जो जो जिन जिनके हैं उन उन धातुओं को पूर्ण करते हैं। इस प्रकार से यह सम्पूर्ण शरीर खाये, पिये, चाटे, चाखे आहार रूपी रस से पूर्ण होता है। और रोग भी इस शरीर में खाये, पिये, चाटे आदि भोजन से उत्पन्न होते हैं। इसमें हित वस्तुओं का उपयोग शुभकारी और अहित वस्तुओं का उपयोग अशुभकारी होता है।

एवंवादिनं भगवन्तमात्रेयमग्निवेश उवाच–दृश्यन्ते हि भगवन्! हितसमाख्यातमप्याहारमुपयुञ्जाना व्याधिमन्तश्चागदाश्च, तथैवाहितसमाख्यातम्, एवं दृष्टे कथं हिताहितोपयोगविशेषात्मकं शुभाशुभविशेषमुपलभामह इति।।6।।

तमुवाच भगवानात्रेयः– न हिताहारोपयोगिनामाग्निवेश! तन्निमित्ता व्याधयो जायन्ते, न च केवलं हिताहारोपयोगादेव सर्वव्याधिभयमतिक्रान्तं भवति; सन्ति ह्यतेऽप्यहिताहारोपयोगादन्यारोगप्रकृतयः, तद्यथा–कालविपर्ययः, प्रज्ञापराधः, शब्दस्पर्शरूपरसगन्धाश्चासात्म्या इति। ताश्च रोगप्रकृतयो रसान् सम्यगुपयुञ्जाानमपि पुरुषमशुभेनोपपादयन्तिः। तस्माद्धिताहारोपयोगिनोऽपि दृश्यन्ते व्याधिमन्तः। अहिताहारोपयोगिनां पुनः कारणतो न सद्यो दोषवान् भवत्यपचारः। न हि सर्वाण्यपथ्यानि तुल्यदोषाणि, न च सर्वे दोषास्तुल्यबलाः, न च सर्वाणि शरीराणि व्याधि क्षमत्वे समर्थानि भवन्ति। तदेव ह्यपथ्यं देशकालसंयोगवीर्यप्रमाणातियोगाद्भूयस्तरमपपथ्यं संपद्यते। स एव दोषः संसृष्टयोनिर्विरुद्धोपक्रमो गम्भीरानुगतश्चिरस्थितः प्राणायतनसमुत्थो मर्मोपघाती कष्टतमः क्षिप्रकारितमश्च संपद्यते। शरीराणि चातिस्थूलान्यतिकृशान्यनिविष्टमांसशोणितास्थीनि दुर्बलान्यसात्म्याहारोपचितान्यल्पाहाराण्यल्पसत्त्वानि च भवन्त्यव्याधिसहानि, विपरीतानि पुनर्व्याधिसहानि। एभ्यश्चैवापथ्याहारदोषशरीरविशेषेभ्यो व्याधयो मृदवो दारुणाः क्षिप्रसमुत्थाश्चिरकारिणश्च भवन्ति। त एव वातपित्तश्लेष्माणः स्थानविशेषे प्रकुपिता व्याधिविशेषानभिनिर्वर्तयन्त्यग्निवेश![9]

इस प्रकार से कहते हुए आत्रेय ऋषि को अग्निवेश बोले– 'हे भगवान्। संसार में देखने में आता है, कि जो मनुष्य हितकारी आहार का उपभोग करते हैं, वे रोगी दिखाई देते हैं और अहितकारी भोजन करने वाले भी नीरोग दिखते हैं।

9 च०सं०, सू०स्था०, अ० 28/7

अग्निवेश को भगवान् आत्रेय ने कहा– हे अग्निवेश! जो मनुष्य हितकारी अन्न खाते हैं उनको इनके कारण से उत्पन्न होने वाले रोग नहीं होते और न केवल हित आहार का उपसेवन ही सब रोगों से बचा सकता। अहित आहार को छोड़कर कुछ दूसरी भी रोग की प्रकृति है। यथा काल विपर्य्यय (ऋतुओं का परिवर्तन), प्रज्ञापराध और परिणाम, शब्द स्पर्श, रूप, रस, गन्ध का असात्म्य (अतियोग, मिथ्यायोग, या अयोग) होना। ये रोग के कारण आहार रसो का सम्यक् प्रकार से उपयोग करने पर भी पुरुष में अशुभ लक्षण उत्पन्न कर देते हैं। इसलिये हितकारी आहार को सेवन करने वाले भी रोगी दिखाई देते हैं। इसी प्रकार जो व्यक्ति अहित आहार का उपसेवन करते हैं, उनमें रोगों के ये कारण जल्दी दोषयुक्त नहीं होते। क्योंकि सम्पूर्ण अपश्य समान दोषकारक नहीं हैं और सब दोष समान बल वाले भी नहीं हैं और सारे शरीर रोम को सहन करने में समर्थ नहीं होते। इसलिये अपथ्य देश चावल पित्तकारक हैं, यही अनूप देश के योग से अधिक अपथ्य कारक हो जाता है, काल (शरत्काल में अपथ्य बलवान् और हेमन्त में निर्बल), संयोग दही राव के साथ चकवात और शहद के साथ निर्बल) वीर्य (संस्कार या उष्ण करने से अपथ्यतम और शीत से अपथ्य), प्रमाण अर्थात् मात्रा के अतियोग से अपश्यतम और हीन वक से निर्बल बन जाते हैं। इसी प्रकार बहुत से कारणों के मिलने से, विरुद्ध चिकित्सा होने से गम्भीर आशयों में, शरीर के बहुत अन्दर प्रवेश कर जाने से तथा शरीर में चिरकाल से आने पर, शंख आदि दस पचाश्रयों में स्थित होने से, मर्मस्थानों को पीड़ित करने से बहुत दुःख देने के कारण असाभ्य होने से, शीघ्र विकार उत्पन्न करने से अपथ्य बलवान बन जाता है। इसी प्रकार बहुत मोटा, बहुत कृश, जिनकें मांस, रक्त, अस्थि, ढोके, निर्बल हो गये हो जो विषम शरीर वाले हैं, जो असात्म्य आहार को सेवन करने वाले थोड़ा खाने वाले, अल्प सत्व वाले शरीर रोगों को सहन नहीं कर सकते। इनके विपरीत गुणों वाले शरीर व्याधि को सहन कर सकते हैं। इसलिये अपथ्य आहार, दोष शरीर को विशेषता से रोग मृदु, दारूण, शीघ्र होने वाले, अथवा देर में होने वाले होते हैं। इसलिये हे अभिवेश! वात, पित्त कफ विशेष स्थानों में कुपित होकर भिन्न–भिन्न प्रकार के रोगों को उत्पन्न करते हैं।।5–6।।

तत्र रसादिषु स्थानेषु प्रकुपितानां दोषाणां यस्मिन् स्थाने ये ये व्याधयः संभवन्ति तांस्तान् यथावदनुव्याख्यास्यामः।। 8।।

अश्रद्धा चारुचिश्चास्यवैरस्यमरसज्ञता। ह्रल्लासो गौरवं तन्द्रा साग्ङमर्दो ज्वरस्तमः।। 9।।

पाण्डुत्वं स्त्रोतसां रोधः क्लैब्यं सादः कुशाग्ङता। नाशोऽग्नेरयथाकालं वल्यः पलितानि च।। 10।।

वक्ष्यन्ते रक्तदोषजाः कुष्टवीसर्पपिडका रक्तपित्तमसृग्दरः।। 11।।

गुदमेढ्रास्यपाकश्च प्लीहा गुल्मोऽथ विद्रधिः। नीलिका कामला व्यग्ङः पिप्लवस्तिलकालकाः।।12।।

दद्रुश्चर्मदल। श्वित्रं पामा कोठास्त्रमण्डलम्। रक्तप्रदोषाज्जायन्ते, शृणु मांसप्रदोषजान्।।13।।

अधिमांसार्बुदं कीलं गलशालूकशुण्डिके।
पूतिमांसालजीगण्डमालोपजिह्विकाः।।14।।

विद्यान्मांसाश्रयान्, मेदःसंश्रयांस्तु प्रचक्ष्महे। निन्दितानि प्रमेहाणां पूर्वरूपाणि यानि च।।15।।

अध्यस्थिदन्तौ दन्तास्थिभेदशूलं विवर्णता।
केशलोमनखश्मश्रुदोषाश्चास्थिप्रदोषजाः।।16

रुक् पर्वणां भ्रमो मूर्च्छा दर्शनं तमसस्तथा। अरुषां स्थूलमूलानां पर्वजानां च दर्शनम!।। 17।।

मज्जप्रदोषात, शुक्रस्य दोषात् क्लैव्यमहर्षणम्। रोगि वा क्लोबमल्पायुर्विरूपं वा प्रजायते।। 18।।

न चास्य जायते गर्भः पतति प्रस्त्रवत्यपि। शुक्रं हि दुष्टं सापत्यं सदारं बाधते नरम्।। 19।।[10]

इनमें रस आदि स्थानों में कुपित वात आदि दोष, जिस जिस स्थान पर जो जो रोग उत्पन्न करते हैं उन उन रोगों को कहते हैं– अभद्धा, भोजन, में श्रृद्धा न होना, अरुचि, भोजन में अरूचि अनिच्छा), भारीपन तन्द्रा, शरीर में पीड़ा, ज्वर, तम, अन्धकार, पाण्डु वर्ण स्त्रोतों का अवरोध, नपुंसकता, साद (शिथिलता) शरीर की निर्बलता, अग्नि

10 च०सं०, सू०स्था०, अ० 28/8–19

(जाठराग्नि) का नाश, बिना समय के झुर्रिया और बालों का श्वेत होना ये रसजन्य रोग हैं।

रक्तजन्य रोग कहते हैं– कुष्ठ, वीसर्प, पिडकायें, रक्तपित्त, रक्तप्रदर, गुदपाक, शिश्न का पकना, ल्पीहा, गुल्म, विद्रधि नीलिका, व्यंग (झाई), कामला, विप्लव, तिल के आकार के मस्से, दाद, चर्मदल श्वित्र, पामा, कोठ, रक्तमण्डल (लाल लाल चक्के) ये रक्तजन्य रोग हैं।

मांसजन्य रोग कहते हैं–अधिमांस, अर्बुद, कील, गलशालूक, (गले में शोथ होने से बढ़ा हुआ मांस) गलशुण्डिका, पूतिमांस, अलजी, गलगण्ड, गण्डमाला, उपजिहिका, ये मांसजन्यरोग हैं।

भेदजन्य रोग कहते हैं प्रमेह के निन्दित पूर्वरूप (बालो की जटिलता, आदि अथवा अति स्थूल पुरुष के आयु ह्रास आदि आठ रूप) ये हैं अथवा अतिस्थूलता से उत्पन्न आयु का ह्रास आदि मेद जन्य है।

अस्थि के नीचे दूसरी अस्थि आना, अधिदन्त, दन्तभेद, दांत दुखना, अस्थियों में शूल, केश, रोम, नख और दाढ़ी मूंछ के रंग का परिवर्तन होना ये अस्थिजन्य रोग हैं। जोड़ों में दर्द, चक्कर आना, मूर्छा, आँखों के सामने अंधेरा आना, व्रण, शिर में छोटी–छोटी फन्सियां छोटे–छोटे जोड़ों में गांठे पड़ जाना ये मज्जाजन्य रोग हैं।

> इन्द्रियाणि समाश्रित्य प्रकुप्यन्ति यदा मलाः। उपघातोपतापाभ्यां योजयन्तीन्द्रियाणि ते।। 20।।
>
> स्नायौ सिराकण्डराभ्यो दुष्टाः क्लिश्नन्ति मानवम्। स्तम्भसंकोचखल्लीभिर्ग्रन्थिस्फुरणसुप्तिभिः।। 21।।
>
> मलानाश्रित्य कुपिता भेदशोषप्रदूषणम!। दोषा मलानां कुर्वन्ति सग्ङोत्सर्गावतीव च।। 22।।
>
> विविधादशितात् पीतादहिताल्लीढखादितात्। भवन्त्येते मनुष्याणां विकारा य उदाहृताः।। 23।।
>
> तेषामिच्छन्ननुत्पत्तिं सेवेत मतिमान् सदा। हितान्येवाशितादीनि न स्युस्तज्जास्तथाऽऽमयाः।। 24।।[11]

[11] च०सं०, सू०स्था०, अ० 26/20–26

जिस समय अपथ्य आहार के कारण मल कुपित होकर इन्द्रियों में स्थित होते हैं, उस समय ये मल इन्द्रियों का नाश या इन्द्रियों को पीड़ित करने लगते हैं। ये मल वायु, शिरा, कण्डराओं में कुपित होकर मनुष्य को बहुत कष्ट पहुंचाते हैं। इससे स्तम्भ, जड़ता, संकेच सिकुड़ना, खल्ली हाथ पांव का मुड़ जाना, ग्रन्थि (स्नायु आदि में गांठ), स्फुरण, घमन, और संज्ञानाश उत्पन्न होता है। जिस समय वात आदि दोष मलों का आश्रय लेकर कुपित होते हैं, उस समय मल का भेद (अतीसार) तथा मलों को सुखाना अथवा मलों के रंग को विकृत करना या मलों का अवरोध अथवा अतिप्रवृत्ति उत्पन्न कर देते हैं। जो रोग यहां पर लिखे हैं, वे नाना प्रकार के खान, पान, चाटन, खाद्य रूप आहार द्वारा मनुष्यों में उत्पन्न होते हैं। ये रोग उत्पन्न न हों, इस इच्छा से मनुष्य सदा हितकारक आहार का सेवन करे, जिससे कि आहारजन्य रोग न होवे।

> अजातानामनुत्पत्तौ जातानां विनिवृत्तये। रोगाणां यो विधिर्दृष्टः सुखार्थीं तं समाचरेत्।। 34।।
>
> सुखार्थाः सर्वभूतानां मताः सर्वा प्रवृत्तयः। ज्ञानाज्ञानविशेषात्तु मार्गामार्गप्रवृत्तयः।। 35।।
>
> हितमेवानुरुध्यन्ते प्रपरीक्ष्य परीक्षका। रजोमोहावृतात्मानः प्रियमेव तु लौकिकाः।। 36।।
>
> श्रुतं बुद्धिः स्मृतिर्दाक्ष्यं धृतिर्हितनिषेवणम्। वाग्विशुद्धिः शमो धैर्यमाश्रयन्ति परीक्षकम्।। 37।।
>
> लौकिकं नाश्रयन्त्येते गुणा मोहरजःश्रितम्। तन्मूला बहवो यन्ति रोगाः शारीरमानसाः।। 38।।[12]

संक्षेप से सुख की इच्छा रखने वाले पुरुष को चाहिये कि रोगों को उत्पन्न न होने देने की जो विध कही है, तथा उत्पन्न हुए रोगों को हटाने की जो विधि कही है, उसका आचरण, सेवन करें। क्योंकि सब प्राणियों की सब प्रवृत्तियां सुख प्राप्त करने की इच्छा से ही होती हैं। ज्ञान और अज्ञान के भेद से ही मनुष्य मार्ग या अमाग्र का अनुसरण करने लगता है। परीक्षक विद्वान् परीक्षा करके हितकारी वस्तुओं का सेवन करते हैं, रजो गुण और मोह में फंसे साधारण–जन प्रिय पदार्थ ही चाहते हैं। श्रुत, बुद्धि

[12] च०सं०, सू०स्था०, अ० 28/34 –38

स्मृति छढ़ता हितकारी वस्तुओं का सेवन, वाणी की शुद्धि, शम, और धैर्य्य, ये गुण विवेकी पुरुष में होते हैं। परन्तु मोह और रज से युक्त होने के कारण लौकिक, अविवेकी पुरुष में ये गुण नहीं होते। इसलिये इनको शारीरिक और मानकिस बहुत प्रकार के रोग होते हैं।

> प्रज्ञापराधाद्धयहितानर्थान् पच्ञ निषेवते। संधारयति वेगांश्च सेवते साहसानि च।। 39।।
>
> तदात्वसुखसंज्ञेषु भावेष्वज्ञोऽनुरज्यते। रज्यते न तु विज्ञाता विज्ञाने ह्यमलीकृते।। 40।।
>
> न रागान्नाप्यविज्ञानादाहारानुपयोजयेत्। परीक्ष्य हितमन्श्नीयाछेहो ह्याहारसंभवः।। 41।।
>
> आहारस्य विधावष्टौ विज्ञेषा हेतुसंज्ञकाः। शुभाशुभसमुत्पतौ तान् परीक्ष्य प्रयोजयेत्।। 42।।
>
> परिहार्याण्यपथ्यानि सदा परिहरन्नरः। भवत्यनृणतां प्राप्तः साधूनामिह पण्डितः।। 43।।
>
> यत्तु रोगसमुत्थानमशक्यमिह केनचित्। परिहर्तुं न तत् प्राप्य शोचितव्यं मनीषिभिः।। 44।।[13]

अज्ञानी मनुष्य बुद्धि के दोष से .... के अहित शब्द, स्पर्शादि विषयों का सेवन करता है, मल मूत्रादि के वेगों को रोकता है, साइस के कामों को करता है, प्रारम्भ में सुखदायक और परिणाम में दुःखदायक कमों को करता है, इसलिये दुःख उठाता है। परन्तु ज्ञानी पुरुष ज्ञान द्वारा बुद्धि के स्वच्छ होने से इन कामों में नहीं फंसता, अतः सुखी रहता है। राग अर्थात् आशक्ति से (जानते हुए भी भोजन अहितकर है, फिर भी लालच से) या अज्ञान से भोजन को नहीं खाना चाहिये, परीक्षा करके ज्ञानपूर्वक हितकारी अन्न को शुभ–अशुभ परीक्षा के लिये आठ प्रकार की परीक्षा है। ये आठ परीक्षायें विमान स्थान अध्याय 1 में प्रकृति–करण, संयोग आदि से कही हैं। भोजन की इन आई विशेषतओं से परीक्षा करके भोजन करना चाहिये। जि अपथ्यों से मनुष्य बच सकता हो उनसे बचने का सदा यत्न करना चाहिये, इस प्रकार करने से पुरुष पअराघरहित होता है और साधु पुरुषों में बुद्धिमान् गिना जाता है। क्योंकि प्रारब्ध के

---

13 च०सं०, सू०स्था०, अ० 28/39–44

बलवान् होने से उत्पन्न होता है वह यदि चिकित्सा कार्य के लिये असाध्य भी हो तो भी बुद्धिमान् मनुष्य को शोक, चिन्ता नहीं करनी चाहिये।।38–43।।

तत्र श्लोकाः–

> आहारसंभवं वस्तु रोगाच्श्राहारसंभवाः। हिताहितविशेषाच्च विशेषः सुखदुःखयोः।। 45।।
>
> सहत्वे चासहत्वे च दुःखानां देहसत्त्वयोः। विशेषो रोगसग्ङाच्श्र धातुजा ये पृथक्पृथक्।। 46।।
>
> तेषां चैव प्रशमनं कोष्ठाच्छाखा उपेत्य च। दोषा यथा प्रकुप्यन्ति शाखाभ्यः कोष्ठमेत्य च।। 47।।
>
> प्राज्ञाज्ञयोर्विशेषच्श्र स्वस्थातुरहितं च यत्। विविधाशितपीतीये तत् सर्वं संप्रकाशितम्।। 48।।[14]

यह शरीर आहार से उत्पन्न होता है, रोग भी आहार से उत्पन्न होते है हित और अहित की विशेषता ही सुख दुःख में कारण है।

विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार आहार एवं स्वास्थ्य

स्वास्थ्य रोग का न होना या अशक्तता मात्रा नहीं, बलिक पूर्ण शारीरिक, मानसिक और सामाजिक तन्दुरुस्ती की स्थिति है।

पिछले कई वर्षों से इस परिभाषा का विस्तार हुआ–

शारीरिक मापदण्ड

व्यक्ति में अच्छे स्वास्थ्य के संकेत हैं – अच्छा रंग, अच्छे बाल, चमकती आंखें, स्वच्छ त्वचा, अच्छी सांस, तन्दुरुस्त शरीर, गाढ़ी नींद, अच्छी भूख, अच्छी पाचन शक्ति, सरल सहायक, शारीरिक गतिविधियाँ, सम्पूर्ण चेतना, नाड़ी की गति, रक्तचाप व सहनशीलता इत्यादि हैं।

---

14 च०सं०, सू०स्था०, अ० 28/45–48

मानसिक मापदण्ड – मानसिक और शारीरिक स्वास्थ्य एक दूसरे से जुड़े हैं।

आध्यात्मिक मापदण्ड – आधुनिक जीवन पर तनाव व दबाव होने से स्वास्थ्य के मापदण्ड पर विचार करना अनिवार्य है। आध्यात्मिक स्वास्थ्य नैतिक मूल्यों, संहिताओं, अभ्यासों व चिंतन इत्यादि के माध्यम से प्राप्त किया जा सकता है।

व्यवसायिक मापदण्ड – कुछ व्यक्तियों के लिए ये केवल आय का एक जरिया है, लेकिन कुछ के लिए जिन्दगी के सभी मापदण्डों के द्वारा जो सफलता मिलती है, यह उसे प्रदर्शित करता है।

स्वास्थ्य का निर्धारण इस प्रकार किया जा सकता है –

अनुवांशिकता – प्रत्येक व्यक्ति के शारीरिक व मानसिक गुण उसके गुणसूत्रों की प्रगति से निश्चित होते हैं जो कि उसके अभिभावकों के गुणसूत्रों से निश्चित होती है। गुणसूत्रों की संरचना बाद में परिवर्तित नहीं हो सकती। गुणसूत्रों की खराबी बहुत सी बीमारियों को उत्पन्न करती है जैसे सिकल सैल एनीमिया, हीमोफीलिया, चयापचयय की कुछ खराबी इत्यादि। अतः स्वास्थ्य की स्थिति गुणसूत्रों की संरचना पर निर्भर करती है।

वातावरण – हिप्पोक्रेटस ने बीमारियों को वातावरण से जोड़ा जैसे मौसम, जल, भोजन, हवा आदि।

वाह्य वातावरण को तीन घटकों में विभाजित किया जा सकता है।

I- शारीरिक घटक,

II- जीव वैज्ञानिक घटक,

III- मानसिक व सामाजिक घटक

ये सभी अथवा कोई एक व्यक्ति के स्वास्थ्य को प्रभावित करते हैं और इसका सीधा प्रभाव होता है।

जीवन पद्धति – जीवन पद्धति विभिन्न सामाजिक अन्तर–प्रक्रिया द्वारा विकसित होता है स्वस्थ जीवन पद्धति स्वास्थ्य की जरूरत है। उदाहरण के लिए पौष्टिकता, पर्याप्त नींद, शारीरिक गतिविधियां आदि। स्वास्थ्य में प्रत्येक की जीवन पद्धति और इसे निशिचत करने वाले कारक दोनों चीजें शामिल हैं। वर्तमान दिनों में स्वास्थ्य समस्याओं को विशेषतया विकासशील देशों में परिवर्तित जीवन पद्धति के साथ जोड़ा गया है। अतः अच्छे स्वास्थ्य के लिए स्वस्थ जीवन पद्धति को अपनाना है।

सामाजिक आर्थिक स्थिति – कुछ महत्त्वपूर्ण कारण व्यक्ति के स्वास्थ्य को प्रभावित करते है। जैसे–

- आर्थिक स्तर
- शिक्षा
- व्यवसाय

व्यवसाय→बेरोजगारी, बीमारी व मृत्यु को बढ़ावा देती है। अधिकांशतरू कार्य आय व स्तर ही प्रभावित नहीं करती अपितु यह एक मानसिक व सामाजिक आघात भी पहुंचाती है।

स्वास्थ्य सेवाएं – स्वास्थ्य सेवाओं का लक्ष्य लोगों का स्वास्थ्य स्तर सुधारना है। परिवार एवं स्वास्थ्य कल्याण सेवा पद व्यक्तिगत व सामुदायिक सेवाओं की एक विस्तृत श्रृंखला को समाहित करता है। ये सेवाएं बीमारी के इलाज, बीमारी की रोकथाम और स्वास्थ्य को बढ़ावा देने हेतु होती हैं। बच्चों के प्रतिरक्षण से किसी विशेष बीमारी के खतरे को रोका जा सकता है। स्वच्छ पानी के प्रबंध से जल से उत्पन्न होने वाली बीमारियों के फैलाव व उनसे होने वाली मृत्यु से सुरक्षा की जा सकती है। गर्भवती महिलाओं व बच्चों की देखभाल बच्चों एवं माता की अस्वस्थता और मृत्युदर में कमी लाने में योगदान देगा। ये सभी प्राथमिक स्वास्थ्य सेवा के अंग हैं। ये भी उसके घटक हैं जो अच्छे स्वास्थ्य के प्रयास (मार्ग) के रूप में देखा जाता है।

पाचन तंत्र[15]

पाचन तंत्र की जिस बात को चरक ने अपने ग्रन्थ में कहा है वही बात आधुनिक विज्ञान ने इस प्रकार व्यक्त की है।

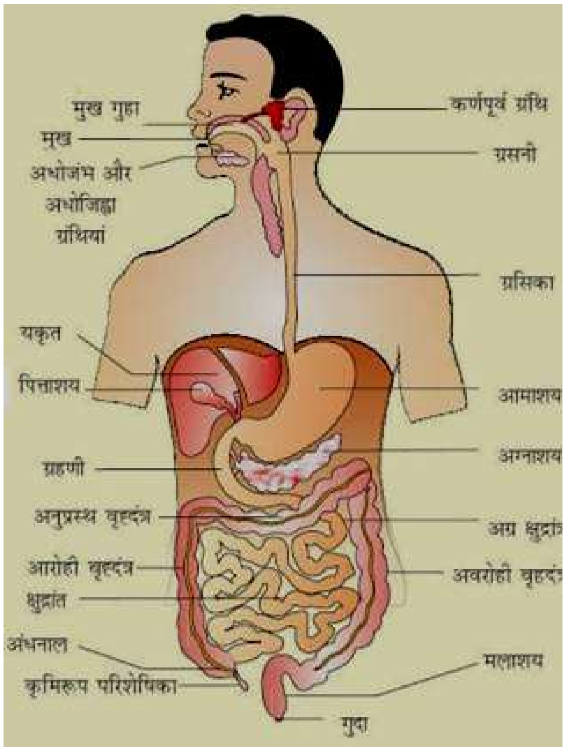

चित्र सं० 10 : मानव पाचन तंत्र

पाचन तंत्र में वे सभी अंग सम्मिलित होते है जो भोजन को चबाने, निगलने, पचने और अवशोषित करने के अलावा अधपचे भोजन को बहार निकालने का कार्य करते हैं। इसमें कई पाचक अंगो समेत विभिन्न्य सहायक अंगो का समावेश होता है।

आइएं जानें अपने पाचन तंत्र को (Human Digestive System):

ग्रासनली (Esophagus)

ग्रासनली लगभग 25 सेमी. (10 इंच) लम्बी तथा लगभग 2 सेमी चौड़ी एक संकरी पेशीय नली होती है जो मुख के पीछे गलकोष से आरंभ होती है, वक्ष से थोरेसिक डायफ्राम (Thoracic Diaphragm) से गुजरती है और उदर स्थित हृदय द्वारा पर जाकर समाप्त होती है।

ग्रासनली की दीवार पतली मांसपेशियों की दो परतो की बनी होती है।

ग्रासनली के शीर्ष पर उत्तकों का एक पल्ला होता है जिसे एपिग्लॉटिस

[15] https://helath.raftaar.in/healthcare/human-body-system-diagestive-system.

(Epiglottis) कहते है जो निगलने के दौरान ऊपर बंद हो जाता है जिससे भोजन श्वासनली में प्रवेश न कर सके।

चबाया गया भोजन इन्ही पेशियों के क्रमाकुंचन के द्वारा ग्रासनली से होकर उदर तक धकेल दिया जाता है।

ग्रासनली से भोजन को गुजरने में केवल सात सेकंड लगते है और इस दौरान पाचन क्रिया नही होती।

आमाशय (Stomach)

आमाशय, ग्रासनली तथा डर्योड़ीनस के बीच, डायफ्राम के नीचे, प्लीहा के दाये ओर तथा आंशिक रूप से यकृत पोषण–नली (भोजन–नली) का थैलीनुमा भाग होता है।

इसका अधिकांश (लगभग 5/6) भाग शरीर की मध्य रेखा के बायीं ओर तथा शेष भाग दायी ओर स्थित होता है।

इसके आगे यकृत का बांया खण्ड तथा अग्र उदरीय भित्ति होती है।

इसके पीछे उदरीय महाधमनी, अग्नाशय, प्लीहा या तिल्ली, बायाँ वृक्क एव एड्रिनल ग्रंथि स्थिर होती है।

इसके ऊपर डायफ्राम, ग्रासनली तथा यकृत का बायाँ खण्ड होता है।

नीचे बड़ी आँत की अनुप्रस्थ कोलन होती है तथा छोटी आँत होती है।

इसके बायीं ओर डायफ्राम और प्लीहा तथा दायी ओर यकृत और डर्योड़ीनस होता है।

यह फण्डस अथवा ऊपरी गोल भाग, एक काय या बीच के भाग तथा

जठर–निर्गम या पाइलोरस अथवा दूरस्थ छोटे भाग से मिलकर बना होता है। यह जठर–रस स्त्रवित करता है जो भोजन के साथ मिश्रित होकर आँतो के द्वारा आगे पाचन के लिए उपयुक्त काइम, एक अर्द्धठोस पदार्थ बनाता है।

छोटी आँत (Small Intestine)

यह अंतर्व्यास में बड़ी आँत की अपेक्षा छोटी होती है।

यह आमाशय के जठरनिर्गम द्वार से शेषान्त्र या इलियम के अंत तक फैली होती है, इलियोसीकल कपाट पर बड़ी आँत में खुलने वाली 5 से 7 मीटर लंबी नली होती है।

यह स्त्रियों की अपेक्षा पुरुषो में अधिक लम्बी होती है और तान कम हो जाने के कारण यह जीवित शरीर की अपेक्षा मृत शरीर में अधिक लम्बी होती है।

यह उदरगुहा के निचले मध्य भाग में सामान्यतः बड़ी आँत के मोड़ में रहती है।

इसके निम्न तीन भाग होते हैः

1.ग्रहणी या ड्योडीनम (Duodenum)

यह छोटी आँत का प्रथम भाग होता है जो पाइलोरस से जेजुनम तक फैला होता है।

यह घोड़े के नाल (अंग्रेजी के C अक्षर)आकर का लगभग 25 सेमी (10 इंच) लम्बा होता है जो अग्न्याशय या पैंक्रियाज के शीर्ष को चारो ओर से घेरे होता है।

पाइलोरस से लगभग 10 सेमी की दूरी पर एक उभय छिद्र, वेटर की कलाशिका या एम्पुला ऑफ वेटर में सामान्य पित्त वाहिनी, दोनों आकर खुलती है।

यह संकोचिनी जैसी पेशियों से घिरा रहता है।

2. मध्यान्त्र या जेजुनम (Jejunum)

यह छोटी आँतशेष भाग का ऊपरी 2/5 भाग होता, और लगभग 2.5 मीटर (8 फीट) लम्बा होता है।

इसका ऊपरी सिरा ड्योडीनम जुड़ा होता है।

3.शेषान्त्र या इलियम (Ileum)

यह छोटी आँत का निचला मध्यान्त्र या जेजुनम से लेकर अन्धान्त्र या सिकम तक का भाग जो लगभग 3.5 मीटर लम्बा भाग होता है और इलियोसीकल कपाट पर इसका अंत होता है जो इलियम से बड़ी आँत में भोजन के प्रवाह पर नियंत्रण रखता है और सिकम के पदार्थो को वापस इलियम में आने से रोकता है।

जेजुनम और इलियम के बीच कोई स्पष्ट सीमा निर्धारित नही है छोटी आँत के जेजुनम एवं इलियम दोनों भाग उदरावरण या पैरिटोनियम की एक मुड़ी हुई तह, जिसे मिजेन्ट्री कहते है, के द्वारा उदर की पश्च भित्ति से लटके रहते है।

बड़ी आँत–वृहदांत्र (Large Intestine or Colon)

यह आँत का दूरस्थ भाग होता है जो लगभग 5 फिट लम्बा और छोटी आँत के साथ अपने संगम से गुदा तक विस्तृत होता है तथा अन्धान्त्र के कोलन, मलाशय और गुदा–नली से मिलकर बनता है।

संपूर्ण बड़ी आँत को वृहदांत्र या कोलन भी कहा जाता है। छोटी आंत से बचा हुआ आहार रस बड़ी आंत में आता है। बड़ी आंत में पाचन का काम नहीं होता है। इसमें केवल आहार रस का शोषण होता है। भोजन करने के कई (करीब 4) घण्टे के बाद बड़ी आंत में आना प्रारम्भ होता हैं[16] जिस समय यहां भोजन पहुंचता है उस समय भोजन में 95 प्रतिशत जल रहता है। साथ में प्रोटीन, कार्बोज और वसा का भी कुछ

[16] www.homeopathicmedicine.info/बड़ी आंत/amp/

भाग होता हैं बड़ी आत में सबका अवशोषण होता हैं जल का बड़ा भाग सोख लिया जाता हैं बड़ी आंत में भोजन का जलीय भाग रक्त में मिल जाता है और गाढ़ा भाग (मल) मलाशय की ओर चलता है जो मलाशय से गुदा में होता हुआ मलद्वार (Anus) से बाहर निकल जाता है।

> तस्माद्धिताहितावबोधनार्थमन्नपानविधिमखिलेनोपदेक्ष्यामोऽग्निवेश! तत् स्वभावादुदकं क्लेदयति, लवणं विष्यन्दयसि, क्षारः पाचयति, मधु संदधाति, सर्पिः स्नेहयति, क्षीरं जीवयति, मांसं बृंहयति, रसः प्रीणयति, सुरा जर्जरीकरोति, शीधुरवधमति, द्राक्षासवो दीपयति, फाणितमाचिनोति, दधि शोफं जनयति, पिण्याकशाकं ग्लपयति, प्रभूतान्तर्मलो माषसूपः, दृष्टिशुक्रघ्नः क्षारः, प्रायः पित्तलमम्लमन्यत्र दाडिमामलकात्, प्रायः श्लेष्मलं मधुरमन्यत्र मधुनः पुराणाच्च शालिषष्टिकयवगोधूमात्, प्रायस्तिक्तं वातलमवृष्यं चान्यत्र वेत्राग्रामृतापटोलपत्रात्, प्रायः कटुकं वातलमवृष्यं चान्यत्र पिप्पलीविश्वभेषजात्।। 4।।[17]

हितकारी और अहितकारी विषय का ज्ञान करने के लिये अन्न पान विधि को विस्तार से कहते हैं। स्वाभाविक रीति से जल (क्निन्नता) उत्पन्न करता है। लवण विष्यन्द (नरम बनाना, जलस्त्राव उत्पन्न करता है। क्षार पाचन करता है, शहद जोड़ता है, घी चिकना बनाता है। दूध जीवन देता है, मांस वृंहण पोषण देता है। रस क्षीणता को पुष्ट करता हैं मद्य शरीर को जीर्ण करता है। सिरका शरीर का लेखन करता है, द्राक्षासव अग्नि को बढ़ाता है। फाणित (राब) वात, पित्त, कफ इन को बढ़ाता है, दही सूजन को उत्पन्न करता है। पिण्याक (तिककल्क) और हरे शाक प्रसन्नता का नाश करते हैं। उड़द की दाल मल को विशेष रूप से उत्पन्न करती हैं क्षार नेत्र और शुक्र को नाश करते हैं। अनार और आंवले को छोड़ कर प्रायः सब अम्ल पित्तकारक हैं। मधु और पुराने चावल, जौ और गेहूं को छोड़कर प्रायः करके मधुर रस कफकारक होता है, बेंत के अग्रिम भाग और परवल को छोड़ प्रायः करके सब तिक्त रस वायुकारक और शुक्र–नाशक होते हैं। पिप्पली और सोंठ को छोड़ कर प्रायः करके सब कटु रस वायुकारक तथा शुक्रनाशक हैं।। 4।।

---

17 च०सं०, सू०स्था०, अ० 27/4

इष्टवर्णगन्धरसस्पर्शं विधिविहितमन्नपानं प्राणिनां प्राणिसंज्ञकानां प्राणमाचक्षते कुशलाः, प्रत्यक्षफलदर्शनात्, तदिन्धना ह्यन्तरग्नेः स्थितिः, तत् सत्त्वमूर्जयति, तच्छरीरधातुव्यूहबलवर्णेन्द्रियप्रसादकरं यथोक्तमुपसेव्यमानं, विपरीतमहिताय संपद्यते।। 3।।[18]

प्रिय या हितकर वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्शयुक्त विधिपूर्वक सेवन किया अन्न पान, प्राणिमात्र का प्राण है; ('अन्नं वै प्राणाः') ऐसा विद्वान् मनुष्य कहते हैं। सब प्राणियों के प्राण स्थिर रखने के लिये आहार मुख्य कारण है। यह बात प्रत्यक्ष प्रमाण से भी सिद्ध है। ठीक प्रकार सेवन करने पर अन्न शरीर में स्थित जाठराग्नि का आधार है और इस अभि का अन्न इन्धन रूप होता हैं अन्न के सेवन करने से मन की शक्ति बढ़ती है, शरीर के धातुसमूह, बल वर्ण बढ़ता है, तथा इन्द्रियां निर्मल होती हैं। विधि से विपरीत सेवन करने पर अन्न, विपरीत परिणाम उत्पन्न करता है।

जीवन के निर्वाहकों में सेएकअनिवार्यता भोजन की भी है। भोजन के नियम का पारम्परिक आयुर्वेदिक दृष्टिकोण, पश्चिमी दृष्टिकोण से बहुत भिन्न हैं भारतवर्ष की आयुर्वेदिक संकल्पनाओं के अनुसार हमारा शरीर भोजन से ही बनना है।

न रागान्नाप्यविज्ञानादाहारानुपयोजयेत्। परीक्ष्य हितम्न्श्नीयाद्देहो ह्याहारसंभवः।। 41।।[19]

उचित आहार न केवल शरीर के अच्छे स्वास्थ्य के लिए लाभप्रद है बल्कि रोगों के हमलो को रोकने में भी सक्षम है (अधिकांश रोग अनुचित भोजन की वजह से होते है। निरोगी रहने हेतु तथा उत्तम स्वास्थ्य के लिए भोजन के गुण दोष का ज्ञान होना अत्यावश्यक है।)

जीवन को सुचारू रूप से चलाने के लिए आवश्यक तीन उपस्तम्भ आहार, निद्रा और संयम है।

---

18 च०सं०, सू०स्था०, अ० 27/3

19 च०सं०, सू०स्था०, अ० 28/41

त्रय उपस्तम्भा इति–आहारः, स्वप्नो ब्रह्मचर्यमिति; एभिस्त्रिभिर्युक्तियुक्तैरुपस्तब्धमुपस्तम्भैः शरीरं बलवर्णोपचयोणचितमनुवर्तते यावदायुःसंस्करात् संस्कारमहितमनुपसेवमानस्य, य इहैवोपदेक्ष्यते।। 35।।[20]

सभी आहार त्रिदोष (वात पित्त, कफ) और पंचतत्वों (पृथ्वी, आकाश, वायु, अग्नि, जल से बने होते है।) और ये संरचनाये शरीर पर प्रभाव डालती है।

प्रत्येक व्यक्ति के पाचन शक्ति की क्षमता के अनुसार लिया गया भोजन आहार कहलाता है। आहार करने वाले मनुष्य को चाहिये कि वह भोजन के निमित्त पेट को तीन भागों में बांटा। जिसमें एक स्थान आहार के लिए, दूसरा स्थान द्रव (पेय) के लिये तथा तीसरा स्थान वात वित्त और कफ के लिए जो पाचन प्रक्रिया में सहायता करने में गैस्ट्रिक और हवा के लिए छोड़ देना चाहिए। इस प्रकार तीन भाग करके आहार की मात्रा का प्रयोग करने वाले मनुष्य को आहार की अमात्रा से उत्पन्न होने वाले किसी भी प्रकार के अशुभ परिणाम नहीं प्राप्त होते।

त्रिविधं कुक्षौ स्थापयेदवकाशांशमाहारस्याहारमुपयुञ्जानः; तद्यथा–एकमवकाशांशं मूर्तानामाहारविकाराणाम्, एकं द्रव्याणाम, एकं पुनर्वातपित्तश्लेष्मणाम्, एतावर्ती ह्याहारमात्रामुपयुञजानो नामात्राहारजं किंचिदशुभं प्राप्रोति।। 3।।[21]

आधुनिक विज्ञान में खाद्य को उनकी रासायनिक संरचना के आधार पर वगीकृत किया जाता है जैसे कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन, वसा, विटामिन, खनिज लवण आदि। इस तरह का वर्गीकरण आयुर्वेद में भोजन की प्रकृति तथा उसके स्वाद (रस) के जैविक कार्यवाही पर आधारित है।

आचार्य चरक की तुलना में सुश्रुत ने आहार पदार्थों को 21 भागों विभाजित किया है वहीं चरक ने इसे 12 समूहों में किया है जो निम्न है–

20 च०सं०, सू०स्था०, अ० 11/35

21 च०सं०, वि०स्था०, अ० 2/3

1. शूकधान्य वर्ग (Group of owned grains) जैसे चावल, गेहूँ आदि
2. समीधान्य वर्ग (Group of Legumes) जैसे– मूंग, उड़द, तिल, अरहर आदि
3. मांसवर्ग (Group of Meat) जैसे– गाय, भेड़, मुर्गा, मछली, हंस आदि
4. शाक वर्ग (Group of Vegetables) जैसे– बथुआ, मेथी, चौपतिया, बैगन आदि
5. फल वर्ग (Group of Fruits) जैसे– किशमिश, नींबू, करौदां, आदि
6. हरित वर्ग (Group of Salads) जैसे– तुलसी, अजवायन, धनिया, गाजर, जीरा आदि
7. मद्यवर्ग (Group of Fermental liquors) जैसे– गौड़, सुरासव, मधूलक (गेहू से बनी मघ) आदि
8. वर्ग जल (Group of Water) जैसे– बरसाती पानी, पहाड, तालाब, झरने का पानी आदि
9. गोरस वर्ग (Group of Milk) गाय का दूध, भैंस का दूध, दही घी आदि
10. झक्षुविकार वर्ग (Group of Sugars) गुड़, मधु, गन्ना आदि
11. कृतान्न वर्ग (Group of Dietary preparations) विलेपी, लाजपेया आदि
12. आहारयोग वर्ग (Group of Condiments) धनिया, काली मिर्च आदि

तालिका सं0 7 : खाद्य वर्ग एवं उसके महत्व

क्र. सं.	खाद्य पदार्थ (संस्कृत में)	साधारण नाम	पोषाहार और (आयुर्वेद में)
1	साली शश्तिका	चावल की किस्म Varieties of Rice'	त्रिदोष नाशक, शरीर को बनाये रखती है
2	गोधूम	गेहूँ Wheat	दृढ़, स्फूर्तिदायक, पौष्टिक, कामोछीपक
3	यव	जौ Barley	दैनिक उपयोग के लिए अनुशंसित नहीं मधुमेह और मोटापे में उपयोगी
4	मूदग	हरा चना Green Gram	कफ, पित्त नाशक, पाचन में लाभप्रद, आंखो के लिए अच्छा, दालों में सर्वाधिक पौष्टिक
5	कुलथा	चने की दाल Horsegram	कृमिनाशक, मूत्रा पथरी में उपयोगी
6	तिल	तिल के बीज Sesame seeds	त्वचा, बाल, दात के लिए उपयोगी, बुद्धि और पाचन में सुधार, कफ, पित्त दूर

7	मशा	काला चना Black Gram	मल, रेचक, कामोछीपक बढ़ाने वाली दालों में अहितकारी
8	मक्स	मांस	पौष्टिक शरीर में सर्वश्रेष्ठ
9	अजामांस	बकरे /भेड़े का मांस (Motton)	धातु को समान रखने में, शारीरिक तंत्र में बाधा रहित और पौष्टिक
10	कुक्कुट मांस	मुर्गा (Chicken)	कामोछीपक और पौष्टिक, वाणी स्पष्टता हेतु, शक्तिवर्धक, पसीना लाने वाला
11	गोमांस	गाय का मांस Beef	वात वर्धक/अनियमित बुखार, सूखी खांसी, थकान भूख वृद्धि आदि
12	मत्स्य	मछली	शक्ति को बढ़ावा देने वाला, पौष्टिक, मरहम में कामोछीपक, त्वचा रोग, दैनिक उपयोग के लिए अनुशांसित नहीं।
13	वस्तुका	भेड के बच्चे का मांस	कृमिहर औषधि, स्फूर्तिदायक, बुद्धि और पाचन को बेहतर बनाती है
14	त्रपुशा	खीरा	भारी और ठण्डा (वीर्य में), मूत्रवर्धक
15	Ervaruka	खरबूजा	भारी और शक्ति में ठंड
16	Alabu अल्बू	लौकी	रेचक शक्ति और भारी ठंड
17	कुष्माण्डा	राख लौकी	सभी तीन बिगड़ दूर दोषों और मूत्र और मल के उन्मूलन में मदद करता है, विभिन्न मानसिक विकारों में खुफिया और उपयोगी को बेहतर बनाता है।
18	पटोला	चिचिण्डा	अल्सर के लिए फायदेमंद वीर्य वर्धक और स्वादिष्ट
19	वर्तका	बैंगन	मछली और स्वादिष्ट
20	क	करेला	मछली और स्वादिष्ट
21	मूलक	मूली	परिपक्व मूली बेकार माना जाता है
22	अगस्त्य	सब्जी चिड़ियों	पूर्ण अंधता फायदेमंद होते हैं
23	दाडिम	अनार	त्रिदोषनाशक ह्दय के लिए अत्यधिक प्यास, कामोछीपक, ह्दय में अच्छी राहत मिलती है, मेधाशक्तिविकासक
24	अमलकी	भारतीय करौंदा	विरेचक, नेत्र दृष्टि के लिए फायदेमंद, मधुमेह सहित मूत्र विकारों में उपयोगी/वीर्यवर्धक
25	मद्धिका	अंगूर	प्यास के लिए तत्काल इलाज, जलन, पौष्टिक कामोछीपक
26	आम्र	आम	पौष्टिक और शक्ति को बढ़ावा देने के पका हुआ फल बिगड़ वात दूर
27	वातदा	बादाम	शक्ति को बढ़ावा देने, पौष्टिक और कामोछीपक,

			बादाम के उपयोग raktapitta में contraindicated
28	खजूरह	खजूर	स्वाद में मीठा और हेमोटाईसिस के मामलों में उपचारात्मक साबित होता है
29	अरदरक	अदरक	अपच में उपयोगी, पेट फूलना, पेट का दर्द, उली पेट में ऐंडन, सर्दी खांसी और दमा
30	हिंगु	हींग	शांतिदायक रेचक और तेज, और राहत मिलती है पेट का दर्द अपच और stoo का दमन
31	जीरक	जीरा	पाचन को बढ़ावा देता है और दस्त से छुटकारा दिलाता है
32	मारीच	काली मिर्च	उत्तेजक, सर्दी खांसी की दवा, expectorant और वसा हज़्म
33	Lashuna	लहसुन	संक्रमण, त्वचा रोग, कामोछीपक, प्रबंधन और हृदय रोगी की रोकथाम में उपयोगी इलाज
34	हरिद्रा	हल्दी	विरोधी भड़काऊ और एंडीसेप्टिक, ब्रोन्कियल अस्थमा के लिए उपयोगी, पुरानी खांसी
35	क्षीर	दूध	मीठा, दुग्धावण, पौष्टिक, libidinal उत्तेजक, स्फूर्तिदायक, दमा और ब्रोंकाइटिस से छुटकारा दिलाता है
36	दधि	दही	क्षुधावर्धक, पाचन, उत्तेजक, कामोछीपक, मरहम का शक्ति को बढ़ावा देने, नाक सर्दी, अनियमित बुखार, आहार दुर्बलता में उपयोगी
37	घृत	घी	स्वादिष्ट, बेहतर बनाता है बुद्धि, स्मृति और नेत्र दृष्टि
38	तक्रम	छाछ	सूजन, बवासीर, स्प्रू पेट के रोगों में उपयोगी
39	इक्षु	गन्ना	मीठा, शांत वीर्य वर्धक और मूत्रवर्धक

स्रोत– Journal of Nutrition & food sciencesA yurvedic concept of foodAnd Nutritish by Karra Nishterwar, GujratA yurved University, India.

अच्छे स्वास्थ्य के लिए तथा रोगों के उपचार के लिए उचित आहार पर जोर देता है। यहां दवा की आवश्यकता नहीं व्यक्ति को आहार नियमों का पालन करने का जरूरत है। उचित मात्रा में लिया गया आहार स्वास्थ्य पोषण के लिए लाभदायी है।